भागवतपीयूषबिन्दुः

लेखक :

स्वामी अद्वैतानन्द पुरीजी

लेखक- स्वामी अद्वैतानन्द पुरी जी, ऋषिकेश।

II

©

II,

होती। इसलिये विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह विविध नामवाले पदार्थों से उतना ही व्यवहार करें, जितने से अपना प्रयोजन सिद्ध हो। अपनी बुद्धि को उनकी निस्सारता क

21

अज्ञान से ज्ञान आवृत्त हो रहा है, इसी कारण जीव मोह (अविवेक) में पड़े हुए हैं। इसी अज्ञान की महिमा से रज्जु में सर्प, सीप में रजत, अत्यन्त विविक्त आत्मा में अनात्म

स्वभाव (प्रतिकूल मौसम) इत्यादि और इसके विपरीत प्रिय ध्वनि, प्रिय खान-पान, प्रिय प्राणि, पदार्थों का संग एवं प्रिय प्रकृति का स्वभाव (अनुकूल मौसम) इत्यादि।

अर्थात् विषय से विरत, निरस ज्ञान एवं नाना प्रकार की साधना करने की क्या आवश्यकता है? ऐसी आशंका या कुतर्क की भावना, नास्तिकता एवं श्रद्धा-विश्वास

स्वाभाविक है। ऐसे कलंक लगाने वालों से मेरा विनम्र निवेदन है कि शास्त्रों की सत्यता, वास्तविकता एवं विश्वसनीयता पर कभी भी भूलकर मन में शंका नहीं करनी

विचार करो पृथ्वी में असंख्य बीज दबे पड़े हुए हैं, वह अपने समय आने पर अंकुरित होते रहते हैं किन्तु उन बीजों का कोई पता लगाना चाहे, तो क्या पता लगा सकते हैं? तो

वृत्तियों को सावधानी पूर्वक आत्मचिंतन में स्थिर करने का अभ्यास करें। यही उपाय साधकों, संन्यासियों के लिये अति उत्तम है। इससे पूर्व आत्मतत्त्वज्ञानियों के शरणापन्न

67

73

प्रकार के हैं- वैदिक और अवैदिक, जिसे प्रवृत्ति मार्ग के नाम से जाना जाता है। वैदिक कर्म भी दो प्रकार के हैं, यागादि इष्टकर्म और पूर्त, दत्त अनुष्ठानादि कर्म। अवैदिक

वेदाविरुद्ध व्रत, पूजा, पाठ आदि कर्म स्मार्त कर्म है। स्वाभाविक कर्म वह है जो सत्त्वादि तीनों गुणों के द्वारा मन-बुद्धि के स्वभावानुसार कर्म होते हैं। इन्हीं गुणों के

91

सबकी एकता का विचार भावाद्वैत है। हे युधिष्ठिर! मन, वाणी और शरीर से होने वाले सब कर्म स्वयं परब्रह्म परमात्मा में ही हो रहे हैं, उसी में अध्यस्त हैं, इस भाव से समस्त

विशिष्टाद्वैत, रामानुजाचार्य जी का, (2) शुद्धाद्वैत, विष्णुस्वामी जी और वल्भाचार्य जी का, (3) द्वैताद्वैत, निम्बार्काचार्यजी का, (4) केवलाद्वैत, भगवत्पाद शंकराचार्य जी का

93

111

131

होने के लिये प्रेरित किया गया है। इसका क्या अभिप्राय है ? यह एक विचारणीय विषय है। एक सज्जन (जिज्ञासु) मेरे पास, कभी आये थे और उन्होंने बड़े आग्रहपूर्वक

समाधान को इस पुस्तक के अन्तर्गत कहीं पर समावेश करें। इसी संस्कार से प्रेरित होकर उनकी जिज्ञासा एवं इच्छा की पूर्ति के लिये विशेष रूप से टीका-टिप्पणी करनी

200

290

319

होता है, जैसे- पृथ्वी-जलादि पँचमहाभूत; सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रादि-ग्रह, दिन-रात; वनस्पति, पेड़, पौधे, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियाँ; सुख-दु:ख, जन्म-मृत्यु, बन्धु-मोक्ष इत्यादि।

सत्यरूप में भासमान है। उस अज्ञानजनित का नाश-विनाश एवं भस्मसात् हो जाना निश्चित है; किन्तु जिस दिन ज्योतिर्मय-प्रकाशस्वरूप आत्मा का साक्षात्-अपरोक्ष

329

माध्यम से, उस आत्मा की सिद्धि तो करते ही हैं और यह युक्ति-युक्त भी है। क्योंकि घट, पट, मठ आदि के समान तो जानने का विषय ही नहीं है, इसलिये और कोई उपाय

संसार रूप अथवा शरीररूप वृक्ष में एक ही आत्मा दो रूपों में (सामान्य और विशेषरूप से, विद्यमान हैं। जिसे हम-जीवात्मा और परमात्मा के नामों से जानते हैं। स्थूल शरीर

,

युक्त है। दूसरा शरीर के बाहर-भीतर समरूप से ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ सर्वत्र ओत-प्रोत रूप से व्याप्त करके रहने वाले को परमात्मा या कूटस्थात्मा भी कहा जाता है, इसी को

साथ-साथ दोनों छोर, दो छोर के बिना कोई वस्तु होती ही नहीं। शायद उपरोक्त युक्तियों से आपको समझ में आ गया होगा ऐसी आशा मैं करता हूँ। यह प्रपञ्च-जगत् अज्ञान-निद्रा

विजातीय द्रव्य संसर्गशून्य और अबाह्य है। यह आत्मा ही सबका अनुभव करानेवाला परमात्मा है। बस इतना ही सम्पूर्ण वेदान्तों का उपदेश है। अथवा यों कहें- अज्ञानियों क

होकर पुन: बादल रूप हो जाते हैं। वही बादल-मेघ होकर बरसता है और उस जलविन्दु के साथ वह सूक्ष्मात्मा (जीव) पृथ्वी पर आकर-धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल

368

(Electrons)

परन्तु जब उसकी नींद टूट जाती है, वह जग जाता है, तब न तो स्वप्नकी विपत्तियाँ रहती हैं और न उनके कारण होने वाले मोह आदि विकार ही शेष रहता है। केवलमात्र निद्रा से

मुमुक्षु साधक को चाहिये कि शास्त्र और आत्मनिष्ठ सद्गुरुके द्वारा प्रचण्ड-सूर्यरूप ज्ञानको अर्जित करके हृदयस्थित-अनादि बीजवासनारूप संस्कार को भस्मसात् कर

रहित चितिशक्ति को किसी प्रकार के सुख-दु:ख रूप भोगानुभव कराने में असमर्थ हो जाती है। क्योंकि जिन गुणों के माध्यम से अनुभव कराती थी वे प्रकृति में ही लीन हो

कहना चाहिये- आपत्ति (घोर संकट) के समय पर भी सुख पहुँचाने में तत्पर रहे, अथवा जो अतिशय कष्ट के समयपर भी सम्यक प्रकार से व्यवहार करते हुए सुख देने का

सुनो और सुनकर मनन करके धारण करो, वही परम धर्म है:- अपने आत्मा के प्रतिकूल जैसे हमें स्वीकार्य नहीं, उसी प्रकार अन्य प्राणियों के प्रति उनके प्रतिकूल

प्रारब्ध है वैसा बना है अथवा-प्रारब्ध से प्रेरित होकर शरीर-संघात, मन व इन्द्रियों के व्यवहार हो रहा है। परमात्मा किसी प्राणी या मनुष्यों को शुभाशुभ कर्म करने की प्रेरणा

विद्यागुरु– श्री स्वामी रामानन्द सरस्वती जी, ओंकारेश्वर।

पुस्तक प्राप्ति स्थान-

श्री अद्वैत साधना कुटीर
विस्थापित-निर्मल ब्लॉक बी-II
प्लाट नं0 151, पो0 वीरभद्र, ऋषिकेश

साधना सदन
शंकराचार्य चौक के निकट, कनखल, हरिद्वार

सत्यं साधना कुटीर
वार्ड नं0 3, पो0 कैलास गेट, मुनि की रेती,
ऋषिकेश-249137 (उत्तराखण्ड)

मूल्य-